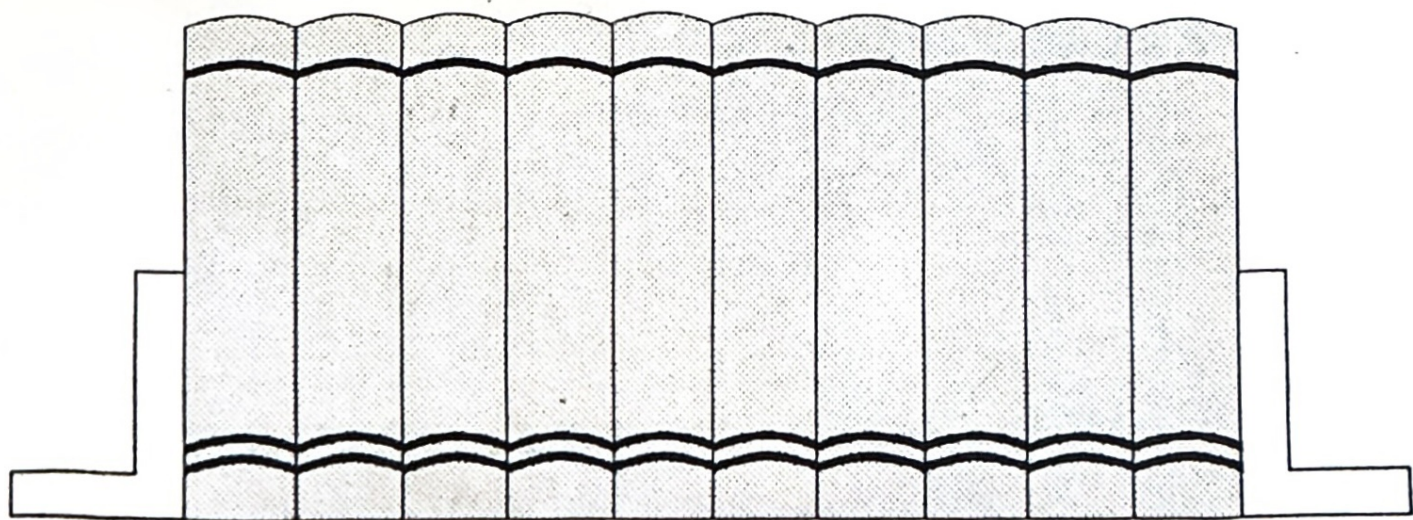


समीक्षा

अप्रैल-जून, 1999

अंक : 1 • वर्ष : 32

संपादक
गोपाल राय



भारत और पश्चिम : संस्कृति के अस्थिर सन्दर्भ □ सपनप्रिया □ कठगुलाम □ उन्माद
हवावाज □ झिपय्या □ प्रेमचन्द-पूर्व के हिन्दी उपन्यास □ तीसरा पाठ □ बृहद शिक्षार्थी
अंग्रेजी-हिन्दी शब्दकोश □ हिन्दी नाटक : मिथक और यथार्थ □ लीला-चिरंतन □ बेकार

समीक्षा

अप्रैल-जून, 1999

वर्ष 32 : अंक 1

प्रकाशन-तिथि :

30.7.99

संपादक : गोपाल राय

सह-संपादक : सत्यकाम

सम्पर्क :

संपादक, 'समीक्षा'

सी-3, कावेरी,

इ.गा.रा.मु. विश्वविद्यालय

मैदानगढ़ी,

नई दिल्ली-110068

फोन : 6853534

एक प्रति का मूल्य : 20.00

वार्षिक शुल्क : 80.00

आजीवन सहयोग राशि : 1000.00

निवेदन

- कृपया चेक अथवा ड्राफ्ट 'समीक्षा' के नाम (देय नयी दिल्ली) नये पते पर ही भेजें। दिल्ली के बाहर के चेक में शुल्क की राशि के साथ रु. 20/- बैंक कमीशन जोड़ दें।
- मनीआर्डर के कूपन पर प्रेषित धनराशि और प्रेषक का नाम-पता अवश्य लिखें।
- कोई अंक न मिलने पर उसकी सूचना शीघ्र दें।
- शुल्क के बिल का भुगतान यथाशीघ्र करें।

सूचना

इस अंक से 'समीक्षा' का वार्षिक शुल्क रुपये 80.00 किया जा रहा है।

अनुक्रम

सम्पादकीय	2
पत्र-प्रतिक्रिया	3
समीक्षा : इकतीस सालों का सफर	4
सांस्कृतिक विवेचन की पुष्ट उपलब्धि (रामस्वरूप चतुर्वेदी की किताब)	16
सपनप्रिया : पुनःसृजन की उपलब्धि (विजयदान देथा का कहानी संग्रह)	19
संबंधों की विषम स्थितियां और नये समीकरण (मृदुला गर्ग का उपन्यास)	22
हर किस्म के उन्माद के खिलाफ (भगवान सिंह का उपन्यास)	24
मराठी-साहित्य : परिदृश्य (चन्द्रकान्त बांदिवडेकर की पुस्तक)	26
हिन्दी उपन्यास का विकास (मधुरेश की किताब)	28
हिन्दी उपन्यास की नयी पड़ताल (ज्ञानचन्द जैन की किताब)	30
नाटक का चौथा पाठ (नेमिचन्द्र जैन की किताब)	34
बहु उपयोगी शब्दकोश (बृहद् शिक्षार्थी अंग्रेजी-हिन्दी शब्दकोश)	35
एक समाज जो हम बना रहे हैं (शीलभद्र का उपन्यास)	36
संस्मरणों पर आधारित कहानियां (गोविन्द मिश्र का कहानी संग्रह)	38
झिपट्टा : एक सकारात्मक कथाकृति (अरुण साधू का उपन्यास)	39
उस शहर तक : जातिगत अभिज्ञान जारी है (तेजिन्दर का उपन्यास)	41
मिथकीय नाट्य प्रयोगों विषयक एक सशक्त दस्तावेज (रमेश गौतम की किताब)	43
अपने-अपने स्वार्थों पर खड़ी इमारत (नरेन्द्र नागदेव का कहानी संग्रह)	46
नर-नारी संबंधों की चिरन्तन लीला (आशापूर्णा देवी का उपन्यास)	48
परिचय	
नायक (ब्रजभूषण का नाटक)	42

सम्पादकीय

इस अंक के साथ *समीक्षा* अपने जीवन के 32 वें वर्ष में प्रवेश कर रही है। यह यात्रा कितनी सार्थक रही है, इस पर टिप्पणी करने का मुझे कोई अधिकार नहीं है। वैसे 'कोई' ऐसा भी है जो *समीक्षा* को 'अपनी ही रूढ़ियों में बंधी बासी हो चुकी' मानता है। यदि सचमुच ऐसा है, तो मुझे स्वीकार कर लेना चाहिए कि *समीक्षा* के प्रकाशित होते रहने का कोई औचित्य नहीं है। पर दूसरी तरफ ऐसे लोग भी हैं जो *समीक्षा* को निकालते रहने के लिए मुझ पर स्नेहिल दबाव ही नहीं डालते, आर्थिक सहायता भी करते हैं। पाठकों के पत्रों से भी *समीक्षा* के प्रकाशन की सार्थकता के संकेत मिलते हैं। ऐसी स्थिति में मेरे लिए यह स्वीकार करने का कोई कारण नहीं कि *समीक्षा* 'अपनी ही रूढ़ियों में बंधी, बासी' हो चुकी है। बहुत से लोग शब्दों का सही अर्थ जाने बिना ही उनका प्रयोग कर बैठते हैं। 'रूढ़ि' और 'बासी' शब्दों को ही लें। यदि मैं इन शब्दों का अर्थ समझता हूं तो *समीक्षा* न तो किसी 'रूढ़ि' में बंधी हुई है, न 'बासी' हुई है। *समीक्षा* की रूढ़ि यदि कोई है तो मात्र यह कि उसका एक खास मकसद है। वह मकसद *समीक्षा* के प्रवेशांक में ही स्पष्ट कर दिया गया था। *समीक्षा* आज तक उस लक्ष्य पर कायम है और जब तक चलेगी, कायम रहेगी। इस लक्ष्य को 'रूढ़ि' कहना किसी भी दृष्टि से विवेकसम्मत नहीं है। *समीक्षा* यदि कोई इतिहास कायम करेगी तो इस लक्ष्य पर दृढ़ रहकर ही। इस मकसद को हम दुहराना नहीं चाहते, क्योंकि इस अंक में *समीक्षा* का जो अब तक का इतिहास दिया जा रहा है, उसमें इसे साफ तौर पर रेखांकित किया गया है। *समीक्षा* की यही अपनी पहचान है, जिसे छोड़ देने पर वह अन्य अनेक पत्रिकाओं की तरह व्यक्तित्वविहीन हो जाएगी।

समीक्षा बासी भी नहीं हुई है। जिस पत्रिका में निरंतर नवप्रकाशित पुस्तकों की चर्चा होती हो, उसे 'बासी' कहने का कोई औचित्य नहीं है। यह भी नहीं कि *समीक्षा* के लेखक घिसे-पिटे, पुराने लेखक हैं। हां, यह जरूर है कि *समीक्षा* तथाकथित स्थापित लेखकों का मुंह नहीं जोहती। *समीक्षा* में सदा नये-नये लेखक, अपने कच्चेपन के वावजूद, प्रवेश करते रहे हैं, इसका प्रमाण भी *समीक्षा* के इतिहास से मिल जाएगा। यह भी जानना चाहिए कि सभी पुराने लेखक बासी नहीं हो जाते, वे निरंतर

'पुनर्नवा' होते रहते हैं। *समीक्षा* के कई लेखक उसके प्रारंभ से ही सहचर रहे हैं। उनके लेखन में आज भी ताजगी बनी हुई है। वे ही *समीक्षा* के मूल स्तंभ हैं। इसके साथ ही अनेक नये समीक्षक *समीक्षा* के द्वारा अपनी पहचान बनाने में लगे हुए हैं। फिर भी यदि *समीक्षा* को कोई 'बासी' कहता है तो यह उसकी समझ का ही दोष है।

समीक्षा पर आक्रमण शायद इसलिए हो रहे हैं कि यह बिना किसी डर, लोभ और आसक्ति के अपनी बात कह रही है। हिंदी साहित्य में कुछ मठाधीश, कुछ माफिया हैं, जो अपने को अजेय समझते हैं। 'आलोचना के जनतंत्र' में उनका विश्वास नहीं है। *समीक्षा* इन मठाधीशों और माफिया के सामने तनकर खड़ी है और आलोचना के जनतंत्र को कायम करने के उद्देश्य से परिचालित है। इसके लिए उसे आम समीक्षकों और पाठकों का समर्थन अपेक्षित है। इसी के तहत हमने साहित्यिक पुरस्कारों के लिए जनमत संग्रह करने का निश्चय किया है। इसी उद्देश्य से हमने आम समीक्षकों को खुला निमंत्रण दिया है कि वे अपनी पढ़ी नयी किताब की समीक्षा लिखकर *समीक्षा* को भेजें। हां, उनसे हम यह अनुरोध जरूर करेंगे कि वे समीक्ष्य पुस्तक के प्रति व्यक्तिगत रागद्वेष से मुक्त, सहयात्री का भाव रखें और अपनी भाषा पर विशेष ध्यान दें। समीक्षकों की प्रतिबद्धता पाठकों के प्रति होनी चाहिए, क्योंकि वे पाठकों के लिए *समीक्षा* लिखते हैं। आजकल सर्जनात्मक समीक्षा के नाम पर ऐसी समीक्षाएं लिखी जा रही हैं, जिनमें कोई विचार स्पष्ट होकर सामने नहीं आता। समीक्षक इसी को अपनी उपलब्धि मानते हैं। *समीक्षा* इस प्रवृत्ति को बढ़ावा देने में विश्वास नहीं करती। अच्छी समीक्षा के लिए जरूरी है कि समीक्षक की भाषा निर्मल जल की तरह साफ हो। और वह 'कहे', केवल 'बहे' नहीं। भाषा के वांकपन का भी महत्त्व होता है, पर उसका 'जलेबीपन' प्रायः पाठकों को तरद्दुद में ही डालता है। अनेक समीक्षकों की भाषा व्याकरण की भूलों से ग्रस्त होने के कारण कथ्य को धुंधला बना देती है। शब्दों के चुनाव में की गयी अनवधानता से भी विचार अस्पष्ट हो जाते हैं। ये सब बातें नये समीक्षकों के ध्यान देने की हैं। ●